ज्ञान तत्व 187

(क) लेख-धर्म, संगठन की राह पर

(ख) समाज टूट नही रहा तोडा जा रहा

(ग) लोक पर भारी तंत्र समाधान सिर्फ लोक स्वराज्य

(घ) भरत झुनझुनवाला द्वारा आलोचना और समीक्षा

(क)धर्म, संगठन की राह पर

संपूर्ण विश्व में धर्म के दो अर्थ माने जाते हैं 1 गुण प्रधान 2 संगठन प्रधान। गुण प्रधान धर्म व्यक्ति के आचरण से जुडा रहता हैं और संगठन प्रधान पहचान से। गुण प्रधान व्यक्ति के गुण कर्म स्वभाव की अभिव्यक्ति होता हैं और संगठन प्रधान खानपान, वेषभूषा, पूजा पध्दति या चोटी दाढी की विभिन्नताओ का आधार बनाता हैं।

दो ढाई हजार वर्ष पूर्व भारत में धर्म की गुण प्रधान परिभाषा ही प्रचलित थी। पहचान संबंधी भिन्नताएँ संगठन प्रधान न होकर गुण प्रधान ही थी। यज्ञोपवीत या चोटी संगठन की पहचान का आधार नही थी। धर्म का अर्थ कर्तव्य के साथ जुडा था। उस समय धर्म शब्द तो प्रचलित था किंतु हिन्दू शब्द नही था। व्यक्तिगत कर्तव्य ही धर्म होने से सबके धर्म भिन्न भिन्न थे । संगठन, गुण कर्म स्वभाव अनुसार वर्ण आश्रम और जाति के आधार पर बने थे, जो धीरे धीरे रुढ होकर विकृति मे भी बदल रहे थे । फिर भी धर्म का अर्थ जीवन पध्दति के साथ गहराई तक जुडा था । उपासना पध्दति के आधार पर बने संगठन संप्रदाय कहे जाते थे, धर्म नही । निर्णय का अन्तिम आधार वेद शास्त्र ही थे । यदि कोई विवाद होता था, तो अन्तिम निर्णय शास्त्रर्थ से होता था और ऐसा निर्णय ही सर्व मान्य था ।

ऐसे ही समय में जैन और बौद्व सम्प्रदाय आया । दोनो को वेद के कुछ निष्कर्षो से असहमति थी । उस समय प्रचलित रुढिवादी विचारो से भी उनका विरोध था । दोनो ही हिंसा के बीच अहिंसा के प्रबल पक्षधर थे। दोनो यह समझते थे कि वेद हिंसा और अहिंसा के बीच अहिंसा के पक्ष में स्पष्ट नही है । इसलिये दोनो ने कुछ मामलो मे वेद से भी अलग धारणा प्रस्तुत की । परिणाम हुआ कि दोनो ही वैदिक मत से अलग सम्प्रदाय बने और शास्त्रार्थ की परिपाटी पर प्रश्न चिन्ह लगा।

यद्यपि जैन और बुद्व कुछ मामलो मे वेदो से भिन्न विचार रखते थे, किन्तु वह भिन्नता अहिंसा के पूरी तरह पक्ष मे थी, तथा भारतीय संस्कृति के विरुद्व नही थी । बुद्व ने

पहली बार धर्म को संगठन का स्वरूप दिया अन्यथा बुद्व के पहले किसी अन्य महापुरुष ने धर्म को संगठन को संगठन का रूप न देकर संगठन को सम्प्रदाय तक ही सीमित रखा था । बुद्व ने पहली बार धम्मं शरणं गच्छामि को संघं शरणं गच्छामि के साथ जोडा ।

बुद्व और जैन के बाद धर्म को संगठन का स्वरूप दिया इशु मसीह ने । इशु मसीह ने भी अहिंसा का प्रबल समर्थन किया, किन्तु धर्म को संगठन का रूप देने की कोशिश की । भारत मे प्रचलित वैदिक धर्म से उनकी प्रणाली बिल्कुल अलग थी । शास्त्रार्थ के स्थान पर प्रेम सेवा और सदभाव को माध्यम बनाया गया । वैदिक धर्मावलम्बी विचार मंथन को सर्वोच्च महत्व देते थे। उनके स्थान पर इसाइयों ने धन को सर्वोच्च महत्व देना शुरू किया। धन और संगठन एक साथ जुडे और धीरे धीरे एक साथ जुडकर ज्ञान और विचार मंथन पर भारी पड़ने लगे। धर्म की व्यक्तिगत आचरण की वैदिक परिभाषा मे विकृति आनी शुरू हुई ।

कुछ सौ वषो बाद इस्लाम आया । उसने इसाइयत से भी आगे बढकर धर्म को पूरी तरह संगठन का स्वरूप देकर अहिंसा को भी छोड़ने का मार्ग अपना लिया । इस्लाम ने धर्म प्रचार के लिये हिंसा के प्रयोग की वकालत की । तर्क और विचार मंथन का तो इस्लाम से दूर दूर तक कोई वास्ता नही रहा । कई जगह संगठित इसाइयत से इस्लाम के भी खूनी संघर्ष हुए । इसाइयत भी धर्म के जगह संगठन का रूप ग्रहण कर चुकी थी । इसलिए उसमे स्वयं मे भी विस्तार के लिये हिंसा के प्रयोग की स्वीकृति की विकृति आ गई थी । इसाइयों ने आपस मे भी हिसंक टकराव किये, जिनमें कुसेड नामक टकराव तो विश्व विख्यात ही है । किन्तु सैद्वान्तिक रूप से जिस तरह इस्लाम ने धर्म प्रचार में हिंसा का समर्थन किया वैसा समर्थन इशुमशीह ने कभी नही किया । इस तरह कुछ सौ वर्षो में ही धर्म, वैदिक पद्वति से निकलकर जैन बुद्व इसाइयत होता हुआ इस्लाम की हिंसा समर्थन तक गिरता चला गया ।

ऐसे ही समय में कार्ल मार्क्स आये । उन्होने महसूस किया कि यदि हिंसा, संगठन और सत्ता को एक साथ जोड दिया जावें तो सारी दुनिया को गुलाम बनाया जा सकता है । उन्होने समझा कि धर्म शब्द इस योजना मे बाधक होगा । अतः उन्होने हिंसा, संगठन और राज्य को एक साथ जोड़कर धर्म को अफीम धोषित कर दिया । हजरत मुहम्मद ने तलवार की प्रशंसा की तो मार्क्स ने बंदूक की नली को आधार बता दिया । वैदिक काल मे धार्मिक विद्वानों को राज्य से दूरी बनाने का स्पष्ट निर्देश था । जैन और बौद्व काल तक यह सीमा रेखा बनी रही । इसाइयों ने कुछ धालमेल करके पोप को राज्य शक्ति के साथ जोड़ा । इस्लाम ने धर्म और राज्य शक्ति को खुलेआम जोड़कर एक खलीफा बना दिया, और साम्यवाद ने धर्म शब्द को अफीम बताकर राज्य शक्ति की पूर्ण तानाशाही को वैधता प्रदान कर दी । यदि धर्म के नाम पर होने वाली हिंसा का आकलन किया जावे तो पूरी दुनिया में सर्वाधिक हिंसा साम्यवादी संगठनो ने की है । इस्लाम या इसाइयत में ऐसी हिंसा अपना वर्चस्व बनानें तक ही सीमित रही और वर्चस्व के बाद वे आन्तरिक हिंसा से हट गये, किन्तु

साम्यवाद ने तो वर्चस्व बनाने के बाद भी ऐसी अभानवीय हिंसा की कि उनके कत्लेआम की कल्पना से ही रोंगटे खड़े हो जाते हैं । विजेता द्वारा विजित पर आंशिक अत्याचार तो साम्यवाद के पूर्व भी होता रहा है किन्तु साम्यवाद ने तो ऐसे अत्याचारो मे सारी सीमाएँ ही तोड़कर रख दी थी ।

इस्लाम और साम्यवाद ने आतंक और राज्य शक्ति को सफलता का पर्याय बनाकर सफलता का सपना देखा था । और दोनो को आंशिक सफलता भी मिली । किन्तु इस्लाम को झटका दिया तुर्किस्तान के कमालपाशा ने और साम्यवाद को गोर्बाचोव ने । तुर्की मे तो कमालपाशा सफल रहा किन्तु अन्य देशो पर उसका निर्णायक प्रभाव नही पडा । क्योकि तुर्की का कोई विशेष प्रभाव अन्य इस्लामी राष्ट्रों पर नही था । दूसरी ओर गोर्बाचोव के परिवर्तन को साम्यवाद सम्हाल नही पाया और ताश के पत्ते के समान ढेर हो गया । चीन अकेला ही ऐसा है जिसने किसी तरह बीच का मार्ग निकाल कर अपनी जान बचाई है, अन्यथा वह भी बिल्कुल ही साफ हो जाता ।

भारत में ढाई हजार वर्ष पूर्व के मार्ग से लेकर बाद मे हुऐ सभी परिवर्तनों के प्रयोग हुए । जैन और बौद्व तो भारत मे रहे ही । इस्लाम की तलवार और इसाइयत की करूणा ने भी भारत पर कई सौ वर्षो तक शासन किया । अर्ध साम्यवादी नेहरू जी ने भी छिपे रूप में सारा जोर लगा लिया किन्तु ये सब मिलकर भी हिन्दुत्व को भारत से समाप्त नही कर सके क्योकि भारत एक मात्र ऐसी व्यवस्था से प्रेरित है जिसमे धर्म, सामाज और राज्य का बिल्कुल अलग अलग अस्तित्व है । तीनो का अलग अलग कार्य क्षेत्र है तथा अलग अलग सीमाएँ है । न कभी संगठन को धर्म का आधार बनाया गया न ही समाज व्यवस्था का आधार । समाज मे हिंसा का समर्थन तो सामाजिक आपात्काल को छोड़ कर पूरी तरह निषिद्व ही था । राष्ट्रीय आपात्काल मे समाज की भूमिका होती ही नही थी, किन्तु यदि सामाजिक आपात्काल भी होता और राज्य दुष्यप्रवृतियो को रोकने मे सक्षम नही होता था तब भी समाज राज्य को सहायता मात्र ही करता था । स्वयं हथियार नही उठाता था । स्वयं हथियार उठाने की नौबत तो तभी आती होगी जब दुष्ट प्रवृति वाले ही शासक बनकर शराफत को पूरी तरह गुलाम बना ले और शराफत की सुरक्षा का कोई अन्य मार्ग न हो । कई सौ वर्षो की विदेशी गुलाामी और तथा कथित स्वतंत्रता के बाद की साम्यवादी गुलामी के बाद भी भारत की समाज व्यवस्था आज तक समाप्त नही हुई यह आश्चर्य जनक ही है ।

किन्तु इतिहास बताता है कि सहन करने की एक सीमा तो होती ही है । जो हिन्दुत्व इतने कठिन दौर से सुरक्षित बचकर बाहर आ गया उसे भी अब संगठन और हिंसा की बीमारी हो गई है । जैन और बौद्व का तो इस संबंध मे कोई प्रभाव नही था किन्तु इसाइयत इस्लाम और साम्यवाद की सफलता को आदर्श मानकर हमारे ही कुछ लोग संगठन और हिंसा की वकालत करने मे अपनी शक्ति लगाने लगे । एक बार तो ऐसा लगा कि भारत

का हिन्दुत्व भी संगठन और हिंसा के मार्ग पर चल पडेगा किन्तु शीघ्र ही फिर पुरानी हवाएँ बहनी शुरू हो गई, धर्म के नाम पर संगठन और बल प्रयोग का समर्थन करने वाले धीरे धीरे कमजोर होने लगे । अब तो भविष्य के लिये संकट टल गया लगता है ।

किन्तु भारत मे समाज व्यवस्था को इसकी भारी कीमत भी चुकानी पड़ सकती है । इस्लाम और साम्यवाद के खूनी पंजे से बचने के लिये इसाई देशो के आधे अधूरे लोकतंत्र के साथ समझौता करना हमारी मजबूरी ही तो है अन्यथा कोई कारण नही था कि हम पश्चिम की लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था के स्थान पर अपनी समाज व्यवस्था रूपी लोक स्वराज्य प्रणाली को नही अपना लेते। हजारो वर्षो का हमारा इतिहास रहा है कि हमने समाज को धर्म और राज्य से अलग और उपर माना। स्वतंत्रता के पूर्व से ही गांधी जी इसी मार्ग की कल्पना कर रहे थे किन्तु राज्य की भूख ने धर्म के नाम पर गांधी को मार्ग से हटा दिया और लोक स्वराज्य की अवधारणा आधे रास्ते ही भटक गई ।

अब साम्यवाद से पिण्ड छूट रहा है । शीघ्र ही नक्सलवाद भी समाप्त होगा ही क्योकि अब उसे भारत में और आगे जाने की जगह नही है। इस्लामिक आतंकवाद भी दम तोड़ने लगा है,क्योकि वह भी सफलता की अन्तिम सीमा तक पहुॅच चुका है । जैसा कि आतंकवाद की अन्तिम सीमा मानी जाती है, कि वह अन्त मे अपने संरक्षको पर भी आक्रमण कर देता है। भारत मे नक्सलवाद द्वारा साम्यवाद पर आक्रमण तथा पाकिस्तान मे उग्रवादियो द्वारा वही की सरकार से टकराव इसके स्पष्ट संकेत है। एक दो वर्षो मे ही इन दोनो खतरो से मुक्ति मिल सकती है। किन्तु इन खतरो से मुक्ति की सभावना मे लोक तंत्र का समर्थन भी तो कुआ और खाई वाली बात को ही चरितार्थ करेगा । यदि लोक तंत्र का विरोध लोक स्वराज्य की स्पष्ट अवधारणा के साथ नही हुआ तो कोई तानाशाही भी लोकतंत्र का विकल्प बन सकती है,जो अधिक ही घातक होगी । अच्छा हो कि हम स्थायी समाधान की दिशा मे चले जिसका अर्थ है, धर्म सामाज और राज्य का पृथक पृथक अस्तित्व अर्थात् सामाज सशक्तिकरण जैसा दो ढाई हजार वर्ष पूर्व भारत मे था, और जो आज अतीत की याद रूप भी बचा दिख रहा है।

(ख)''समाज टूट नही रहा, तोडा जा रहा है–

बजरंग मुनि

वर्तमान समय में परिवार व्यवस्था तथा समाज व्यवस्था टूट नही रही हैं बल्कि तोडी जा रही हैं शासन व्यवस्था सामाजिक एकता से खतरा महसूस करती रहती हैं और इसलिये वर्ग समन्वय को विद्वेष में बदलने में निरंतर लगी रहती है। उक्त बाते अम्बिकापुर अग्रसेन भवन में आयोजित ज्ञान कथा में समाजिक शोध कर्ता बजरंग मुनि जी ने बताई।

उन्होने बताया कि समाज में सिर्फ दो ही वर्ग होते हैं, एक दैवी प्रवृति वालो का और दूसरा आसुरी प्रवृति वालो का। इनका संघर्ष सदा ही चलता रहता हैं जब 'राक्षसी' प्रवृति वाले दुर्जन कमजोर होते हैं उसे सामान्यकाल कहते है तथा जब ऐसे लोग मजबूत होते है उसे सामाजिक आपात्काल कहते हैं । सामान्यकाल में घर्म, सत्य,चरित्र,नैतिक्ता आदि की भिन्न परिभाषा होती है किंतु आपात्काल में देश काल परिस्थिति अनुसार ये परिभाषाएँ बदल जाया करती हैं राम रावण युघ्द के समय भी आश्रमों से राम को हथियार मिलना यह सिघ्द करता हैं कि उस समय के आश्रम भी संकट काल से निपटने की तैयारी करते रहते थे। राम द्वारा मेघनाथ का यज्ञ विघ्वंस अथवा कृष्ण द्वारा देश काल परिस्थिति अनुसार सत्य की परिभाषा बदलना उसी का उदाहरण हैं। मुनि जी ने कहा है कि ऐसे संकट काल के लिये ही गीता में स्वधर्म अर्थात् अपना मार्ग स्वयं चुनने का उपदेश दिया गया । ऐसे संकट काल में महाजनो येन गते स पंथाः का मार्ग घातक होता हैं क्योकि संकट काल में हम जिसे महाजन समझ रहे हैं वह धुर्त हैं या शरीफ यह निर्णय ही बहुत कठिन कार्य हैं। इस पहचान के लिये ही गीता में ज्ञान यज्ञ का महत्व बताया हैं जो एक लम्बी प्रकिया होते हुए भी हैं बहुत आवश्यक ।

मुनि जी ने बताया कि उन्होने पचपन वर्षो तक लगातार किये ज्ञान यज्ञ के आधार पर ही सामान्यकाल और आपातकाल का अंतर समझा हैं और उस अंतर के अधार पर ही समझा है कि वर्तमान समय पूरी तरह आपात्काल के समान हैं। आपात्काल की मुख्य पहचान यह है कि इसमें धूर्तता और बल प्रयोग को ही सफलता का मुख्य आधार मान लिया जाता हैं जो आज पूरी तरह बढ रहा हैं।

मुनि जी ने अंत मे कहा कि वर्तमान समय में समाज को एक जुट होकर आपात्काल का सामाधान करना चाहिये । आयोजक नंद राम अग्रवाल तथा लेखराज अग्रवाल ने घोषित किया कि कथा आगे भी जारी रहेगी।

(ग)लोक पर भारी तंत्र,समाधान सिर्फ लोक स्वराज्य

भारत में लोक तंत्र फेल हो गया हैं, लोक पर तंत्र भारी पड रहा हैं, इसका एक ही सामाधान हैं, लोक स्वराज्य की स्थापना। सरकार सुरक्षा और न्याय अपने पास रखकर विकास सहित सभी काम गॉव और नगर को दे दें। नीतियो से ज्यादा सरकार की नीयत खराब हैं। हम चाहते है कि संविधान में संशोधन कर केन्द्र व राज्य के समान परिवार, गॉव और कस्बे के अधिकारो को सूची बद्ध किया जाये। जनता को अपने चुने हुए प्रतिनिधि को वापस बुलाने का अधिकार मिले।

उक्त बाते लोक स्वराज्य के प्रेरक व रामानुजगंज नगर पंचायत के पूर्व अध्यक्ष बजरंग लाल अग्रवाल ने कही। वे अम्बिकापुर में पत्रकारो से चर्चा कर रहे थे। पुनः रामानुजगंज से ही लोक स्वराज्य अभियान का शंखनाद करने जा रहे श्री अग्रवाल ने परिवार सम्पत्ति व धन का त्याग कर स्वयं को मुनि घोषित कर दिया हैं। लंबे चिंतन मनन के बाद पत्रकारो से अनुभव बॉट रहे श्री अग्रवाल जी ने कहा कि आज देश की समाज व्यवस्था संकट काल से गुजर रही हैं,धूर्तता या बल प्रयोग समाज पर भारी पडता जा रहा हैं। समाज न्याय सुरक्षा की तलाश में और ज्यादा धूर्तो के चंगुल में फंसता जा रहा हैं। पॉच प्रकार के अपराध चोरी,डकैती,लूट,बलात्कार,मिलावट,कमतौल धोखाधडी,जालसाजी और हिंसा या आतंक तथा छः प्रकार की समस्याएं भ्रष्टाचार,चरित्र पतन,साम्प्रदायिकता ,जातीय कटुता, आर्थिक असमानता और श्रम शोषण लगातार बढता जा रहा हैं। आगे भी इनके रूकने के कोई लक्षण नही दिखते। राज्य, शिक्षा को प्रोत्साहित करता हैं तो ज्ञान को निरूत्साहित, न्याय की जगह विकास की बात की जाती हैं। धर्मगुरू विचारो की जगह श्रद्धा बढाने में लगे रहते हैं। इसके दुष्परिणाम देखने के बाद भी इन विपरीत दिशाओ में सकियता अभी भी कायम हैं। इनके समाधान का दो मार्ग उन्होने बताया कि पहला ग्रम सभा को सशक्त करने के लिए सरकारी ग्रम सभा की बजाए उसका स्वरूप सामाजिक ग्रम सभा करना और आम नागरिको के स्वयं के ज्ञान में वृद्धि करना । इस दिशा में पहला कदम उन्होने स्वयं उठाया हैं। केशव चौबे जी के नेतृत्व में रामानुजगंज ब्लाक के 110 गॉवों में सरकारी पंचायत के साथ साथ 15 सदस्यो की सामाजिक ग्रम पंचायत का गठन किया जायेगा।

कार्यालयीन प्रश्नो के उत्तर

(घ)प्रश्न– प्रसिद्व अर्थ शास्त्री भरत झुनझुनवाला ने वाराणसी में नरेगा की यह कहकर आलोचना की है कि इससे उद्योगो पर बुरा असर पड़ेगा । श्री झुनझुनवाला ने कहा है कि नरेगा के प्रभाव से श्रम का मूल्य बढ़ रहा है, श्रमिक मिल नही रहे तथा परिणाम स्वरूप औद्योगिक या कृषि उत्पादन गिरना निश्चत है। सरकार को चाहिये कि इस नीति को बदल कर वह सारा धन उद्योग पतियों को अनुदान रूप में दे दे, जिससे उद्योगपति नये नये रोजगार के अवसर बढा सके । इससे स्थायी रोजगार का श्रृजन होगा।

उत्तर– मुझे नही लगता कि भरत झुनझुनवाला सरीखे अर्थ शास्त्री ने ऐसी गलत बात कही होगी । या तो कोई संदर्भ भिन्न होगा या कुछ गलत छप गया होगा । और यदि उन्होने यह बात इसी तरह कही हैं तो यह कथन पूरी तरह गलत और अमानवीय हैं। हो सकता हैं कि श्री भरत जी स्वयं पूर्व उद्योगपति होने के कारण उनका वह भाव जग गया हो।

उन्होने जो कहा उसका यह भाग तो सच हैं कि नरेगा ने श्रम मूल्य बढने में मदद की हैं। जो मजदूर अस्सी रूपये में भी दर दर भटक रहे थे उन्हे अब अस्सी से कुछ अधिक पर काम मिलने लगा हैं। बाजार में श्रम मूल्य बढा भी हैं और बढ भी रहा हैं। अब या तो औद्योगिक उत्पादन को अपना लाभ कम करना होगा या उत्पादन का बिकी मूल्य बढाना होगा। औद्योगिक उत्पादन अथवा कृषि उत्पादन का लागत मूल्य और विकय मूल्य न बढे इसलिये श्रम का गला घोंट दिया जाय यह अमानवीय तर्क किसी उद्योगपति का भले ही हो किंतु करोडों श्रमजीवियों का तो नही हो सकता। किसी बीमारी का टीका खोज लेने के प्रभाव से उस बीमारी की दवा बनाने वाली कम्पनियॉ पर बुरा असर होगा यह बहुत ही अमानवीय तर्क हैं।

हमें पहले अपना लक्ष्य पहचानना होगा । वर्तमान समय में आर्थिक असमानता कम करना हमारा लक्ष्य हैं। नरेगा आर्थिक असमानता कम करने में सहायक होगा। यदि इसके कारण कृषि उत्पादन या औद्योगिक उत्पादन का लागत मुल्य बढता है तो उससे गरीबी रेखा से नीचे वालो को लाभ की अपेक्षा हानि बहुत कम होगी, जबकि सम्पन्न लोगो को लाभ की अपेक्षा हानि अधिक होगी।

यह बात भी विचारणीय है कि नरेगा से रोजगार उन्ही को दिया जा सकता है, जिन्हे अन्य कहीं रोजगार न मिल पाया हो। नरेगा के अन्तर्गत श्रम मूल्य भी प्रचलित औद्योगिक अकुशल श्रमिक से कम है। समझ में नही आया कि जब उद्योगो मे अकुशल श्रमिकों का वेतन सौ रूपया से अधिक ही है और नरेगा में सौ रूपया ही है तो उद्योगो पर क्या फर्क होगा। मान लीजिये कि हमारे पास चालीस लोगो का रोजगार एक सौ तीस रूपया प्रतिदिन का है। काम करने को सत्तर लोग तैयार हैं। यदि उद्योगो द्वारा चालीस को काम देने के बाद शेष तीस को नरेगा के अर्न्तगत सौ रूपये का काम दे दे तो उद्योग जगत क्यो चिन्तित है। चिन्ता का मतलब तो यही है कि पहले उद्योग जगत रिकार्ड में एक सौ तीस दिखाकर वास्तव मे सत्तर देता होगा । अब नरेगा ने उन्हें सौ से उपर देने हेतु मजबूर किया। अब वे चिल्ला रहे है। उनकी बात मे तो दम नही है। इसलिये भरत जी सरीखे विश्वसनीय अर्थ शास्त्री के द्वारा यह बात कहलाई गई । भरत झुनझुनवाला एक सम्मानित विश्वसनीय अर्थ शास्त्री है। उन्हें तो कम से कम ऐसी बात नही ही कहनी चाहिये ।